भारतीय सन्दर्भों की बात

जब भी हम भारतीय सन्दर्भों की बात करने बैठते हैं, तो अभारतीयता नामक तत्व भी तुरंत ही इधर-उधर कौंधने लगता है और यह सही भी है, क्योंकि अभारतीयता को बिना रेखांकित किये हुए भारतीयता को सही अर्थों में हम समझ भी कैसे सकते हैं भला ?

पिछले दिनों हमने देखा कि बिना किसी सलाह-मशविरा, मीटिंग वगैरह के लिए लाखों मजदूर पैदल निकल पड़े , सौ किलोमीटर से लेकर पंद्रह सौ किलोमीटर तक की यात्रा उनहोंने बिना किसी प्लानिंग के शुरू कर दी . अचानक ! दो-चार दिनों के अन्तराल पर पूरे भारत से मजदूरों के अनगिनत जत्थे अपने-अपने घर के लिए निकल पड़े . वे भूखे रहे, प्यासे रहे, उन्होंने परेशानी की हदों को भी पार किया लेकिन वे चलते रहे और बढ़ते गए अपने घर की ओर !

और घर भी कैसा- न महल, न कोठी, न पक्का मकान . फिर भी उन्हें घर जाना था , और वे अपने गाँव, अपने घर पहुँच गए .
घर के इस कांसेप्ट ने विश्व स्तर पर कई सवाल उठा दिए हैं .

इस ऐतिहासिक घटना के गवाह हम लोग बन गए हैं और यह विश्व इतिहास में शायद पहली घटना है कि लोग लाखों की संख्या में घर की ओर चल पड़े थे, पहुँच भी गए थे . अपनी-अपनी ऊँची बिल्डिंगों की बालकनियों और खिड़कियों में खड़े होकर यह नजारा हम में से कईयों ने देखा , टी.वी. और सोशल मिडिया पर भी देखा . लेकिन व्यवहार के स्तर पर हम बिलकुल अभारतीय बने रहे . ज्यादातर लोग नि:संग बने रहे, वे मजदूरों की सहायता करने दौड़ नहीं पड़े, अपना खाना आधा काट कर मजदूरों को नहीं दे दिया .

इसमें संदेह नहीं कि हम में से ज्यादातर लोगों ने अभारतीय व्यवहार किया . हम दशकों से एक किस्म की अभारतीय जीवन शैली के आदि हो चुके हैं .
हम भूल गए हैं कि हमारे भारत में अपनी हड्डियों तक को समाज के लिए दान कर देने वाले मुनि हुए हैं और हर वर्ष सारी सम्पत्ति दान करके बहन से मांगे हुए उत्तरीय को ओढ़ कर, राजमहल में प्रविष्ट होने वाले प्रतापी राजा हर्षवर्धन के अलावा, अपना शरीर भी दान दे देने वाले राजा विक्रमादित्य भी भारत में हुए हैं , जिनकी कथा हर्षदा मंदिर (पोरबंदर के पास) में आज भी जीवित है, जहाँ मैंने इस ऐतिहासिक कहानी को सुना था . खैर .
भारतीय मूल्यों को दर्शानेवाले ये दृष्टान्त अब हमारे समाज में व्यवहृत नहीं किये जाते, बल्कि

यह देखा जाता है कि यदि सात पुश्तों तक नहीं खत्म होनेवाली सम्पत्ति भी हमारे पास है, तो भी उसका एक हिस्सा गरीबों को हम नहीं दे पाते हैं . हमने कृपणता को अपना व्यवहार बना लिया है.

खूब उच्च मूल्यों को धारण करने वाला भारतीय समाज ऐसा कृपण कैसे हो गया ?
क्या कुछ सौ बरसों की मुस्लिम और अंग्रेजों की गुलामी ने हमारे सारे आदर्शों को छिन्न-भिन्न कर डाला ?
शायद !

आंशिक रूप से यह सही भी है . हम अपना शुद्ध खान-पान, सादा पहरावा-ओढ़ावा भूल गए हैं , सबसे खतरनाक बात यह है कि हमारी सोच भी काफी हद तक परिवर्तित हो चुकी है . लेकिन अब समय आ गया है कि इस बदलाव के बारे में हम गहराई से विचार करें और सकारात्मक तत्वों का आवाहन करें . इस विचार को हमें कई स्तरों पर एक साथ करना पड़ेगा - एक ओर पौराणिक पुस्तकों (सूर्य सिद्धान्त, योगवाशिष्ठ वगैरह) का सहारा लेना पड़ेगा, दूसरी ओर आज के समय में भी व्यवहृत पुरातन आचार-विचार, रीति-रिवाजों पर पैनी दृष्टि डालकर उनके मूल तक पहुँचकर वैज्ञानिक तथ्यों का अन्वेषण करना पड़ेगा.
वास्तव में भारतीय सिद्धांतों के बीच पश्चिमी जगत जैसी केवल आमोद-प्रमोद की संस्कृति नहीं है, बल्कि यहाँ मूल भाव त्याग का रहा है और उसी तत्व को युगों से युगों तक सराहा भी गया है . हमें इस त्याग की संस्कृति वाले तत्व पर गौर करना चाहिए, उसके बारे में सोचना चाहिए और समय रहते उसे परिमार्जित करके आज के समय में अपने व्यवहारों के बीच प्रतिष्ठित कर लेना चाहिए.
यहाँ पर मैं यह जरूर इंगित करना चाहूंगी कि भारतीय समाज, पश्चिमी समाज से एकदम अलग है, बात चाहे पुराने गृहों को रखने की करें या शरीर को डिस्पोज करने की, जला डालने की .

यहाँ यह इंगित करना जरूरी है कि डेनमार्क में , पश्चिमी देशों में यदि कोई अपने पुरखों के मकान को रखना चाहता है तो उसे बहुत ज्यादा टैक्स सरकार को देना पड़ता है, ऐसे में पुराने मकान से लोग पीछा छुड़ा लेते है. उसे गिरा देते हैं, अपनी जड़ों को खत्म कर देते हैं . उन देशों में अलग किस्म का भौतिकतावाद है सिर्फ वर्तमान में जी लेने की उत्कट आकांक्षा है . लेकिन भारत में पुरखों के मकान को, जमीन को बचा कर रखने की कोशिश की जाती है . अपनी जड़ों से जुड़ाव को अच्छा माना जाता है , और जीवगुण तथा ब्रह्म तत्व में विश्वास

रखने के कारण , उसके रहस्य से परिचिति के बल पर , शरीर को तुरंत जला दिया जाता है , क्योंकि भारतीय समाज जीव के ब्रह्माण्ड में देवयान - धूमयान से जाने की बात को जानता है !

इन बातों पर एक साथ सोचना गहरा आश्चर्य पैदा करता है, ये बातें भारतीय समाज की सोच को विश्व स्तर पर अलग ढंग से रेखांकित करतीं हैं और बड़े कायदे से पश्चिमी समाज से बिलगा कर दिखला देती हैं.
इन बातों पर विचार करने के क्रम में मशहूर लेखक ब्रायन वेस्स की पुस्तकों में वर्णित पुनर्जन्म की बात और योगवाशिष्ठ के चरित्रों द्वारा भोगा हुआ पुनर्जन्म का यथार्थ, अचानक अगल-बगल आकर खड़ा हो जाता है.
विस्तार में बात करने पर हम देखते हैं कि ब्रायन वेस्स अपनी पुस्तकों- मेनी मास्टर्स मेनी लाइव्स और ओनली लव इज रीयल में बड़े आधुनिक तरीके से वर्णन करते हैं कि क्लिनिक में इलाज के क्रम में व्यक्ति को , आरामकुर्सी पर लिटा दिया जाता है और हौले-हौले उसे पिछला गुजरा हुआ समय याद करने के लिए कहा जाता है और धीरे-धीरे उसे पूर्वजन्म की वीथियों तक ले जाया जाता है .
इस तरह इस वैज्ञानिक युग में भूतकाल से वर्तमान को जोड़कर कई समस्याओं के समाधान का एक अनोखा रास्ता इस पुस्तक में लेखक ने दिखाया है.

दूसरी ओर योगवाशिष्ठ में लीलोपाख्यान में रानी लीला, ज्ञान हो जाने के बाद खुद ही अपने पुराने आठ सौ बीत चुके जन्मों की बात करतीं हैं, द्रष्टा भाव से देखतीं हैं कि किस जन्म में उनका किस स्थान पर और किस योनि में जन्म हुआ था.
इसी पुरातन पुस्तक में चिन्मय शरीर की बात भी दीख पड़ती है, यानि कि अस्थि-मज्जा के बिना चैतन्य शरीर की एकदम 'फिट-फाट' उपस्थिति और उसका जगत व्यवहार.

पुर्वजन्म की बात हो या चिन्मय शरीर की, अभी के समय में इन बातें के बारे में सोचने मात्र से, इन तथ्यों में सत्यता की हल्की सी गंध को महसूस करते ही दिल की धड़कन बढ़ जाया करती है.
फिर भी इनके बारे में विचार तो करना ही होगा , यदि हमें भारतीय संदर्भों की बात सच में करनी है.
इन सभी तथ्यों-कथ्यों को यहाँ इंगित करने का मकसद यह है कि हम अपनी जड़ों पर थोड़ा बहुत विश्वास करना शुरू कर दें और उससे भी आगे बढ़कर इन बातों को जोड़ने का प्रयास करें, वैज्ञानिकता को खोजें, उसे आज के समय से जोड़ दें तो एक तरह से समाज में शनैः-शनैः सकारात्मकता के प्रवाह को नियोजित कर सकते हैं.

सही कहें तो हम भारतीय एक मल्टीफोल्ड समाज में रहते हैं यानि कि मात्र थर्ड-फोर्थ डायमेंशन नहीं , हमारे पुरातन तथ्य-कथ्य और समाज में प्रचलित नियम इंगित करते हैं कि कम-से-कम दसियों डायमेंशन्स के बीच पसरे हुए स्पेस में हमारा समाज स्थित है, हमारी मान्यताएं प्रतिष्ठित हैं . इनके बीच ईशान कोण भी है और नैत्रृत्य कोण वाली दिशा भी मौजूद है .

इस पर थोड़ा प्रकाश डालते हुए इस दस डायमेंशन्स वाली थ्योरी की बात करती हूँ कि इस किस्म के अद्भुत रहन-सहन की शुरूआत हमारे बचपन के भी पहले शुरू हो जाती है यानि कि माँ के गर्भ से . भारतीय समाज में कायदा है कि ग्रहण लगने पर कांड़ा या लम्बे बांस (गर्भवती स्त्री की लम्बाई वाला) को दीवार से टिकाकर खड़ा कर दिया जाता है, और पके हुए भोजन को या तो फेंक दिया जाता है या उसके ढक्कन के ऊपर गोबर रखकर उसे विकिरण से बचाया जाता है.
यहाँ पर यह इंगित करना जरूरी लगता है कि वैज्ञानिक सोच वाला हमारा समाज सांप के मणि को गोबर से ढंक कर प्रकाश को निरस्त्र कर देने वाली बात को जानता है .
तो जब गोबर मणि को प्रकाश रश्मियों को बाधित कर देने वाली बात भारतीय समाज जानता है, तो उसी तरह ग्रहण के समय भी वायुमंडल में हो रहे विकिरण से अपने खाद्य-पदार्थों को बचाने की बात भी जानता है . सबसे बड़ी बात कि यह समाज ग्रहण के कारण होने वाले दुष्प्रभावों से परिचित है और उसकी काट भी जानता है . तो सहज प्रश्न उठता है कि इस तरह के ज्ञान की बातों को इस समाज ने जाना कैसे होगा और बिना पोथी-बही के इस जानकारी को सम्भाल कर कैसे रक्खा होगा ?
इस तरह के प्रश्न हमें भारतीय समाज से जुड़े तथ्यों को जानने के लिए उकसाते हैं .

इस तरह यहाँ पहुंचकर हम कह सकते हैं कि बहुत समय हमने गँवा दिया है, अब हमें एक नए किस्म के रेनेंसा को आकर देने में लग जाना चाहिए. हमें अपनी भारतीय गणना विधि की से जुड़े तथ्यों को एक जगह एकत्र करना चाहिए, यथा-युगों, चार युगों के विभिन्न सेट, चतुर्युगिओं के नाम, संवत्सरों और कल्पों से जुड़े तथ्य कि कब सावर्णी मनु हुए और कब वैवस्वत मनु. कब उद्दालक मुनि हुए और कब सत्यकाम जाबाल !
एक कैलकुलेशन हमें करना चाहिए कि अट्ठाईस चतुर्युगी के वर्ष मिलकर कुल कितने करोड़ वर्ष बनाते हैं, इसी तरह हमें अपने इतिहास-पुराण से तथ्य इकट्ठे करने चाहिए और उनके आधार पर भारत के विभिन्न समय खण्डों को देखने की कोशिश करनी चाहिए.
इसी तरह पुरातन शास्त्रों में वर्णित कहानियां हमें कई बार रास्ता दिखा देतीं हैं- जैसे कथा सरित्सागर की उदयन, चन्द्रपीड़ वगैरह की कहानी परीक्षित से जा जुड़ती है और परीक्षित स्वयं

महाभारत से. महाभारत के पत्रों के बीच वृद्ध हनुमान हैं, जो रामायण के महत्वपूर्ण चरित्र हैं- रामायण के दशरथ श्रवणकुमार से जुड़े हैं, तो श्रृंगी ऋषि से भी. कथाएं-उपकथायें और भी हैं. विश्वामित्र-वशिष्ट कथा के साथ त्रिशंकु को ब्रह्माण्ड में स्थित कर दिए जाने की बात भी है. वशिष्ठ मुनि के सन्दर्भ में योगवाशिष्ठ में काकभुशुण्डी की कहानी है, जो पृथ्वियों के उद्भव और प्रलय के सटीक विवरणों से भरी पड़ी है. ये विवरण आज के वैज्ञानिकों के ज्ञान को ललकारने की हिम्मत रखते हैं !
ऐसे में क्या हम भारतीओं का यह कर्तव्य नहीं है कि हम अपनी अमूल्य थाती पर खुली हुई नजर डालें ? उसे सहेजें, उसे कायदे से विश्व के सामने रक्खें ?

निश्चय ही हमें यह करना चाहिए.
हमें छोटी-छोटी बातों पर आधुनिक-वैज्ञानिक दृष्टि डालने की आदत डालनी चाहिए और भारतीयों को अपने यहाँ प्रचलित खाद्य-अखाद्य की सूची का निर्माण कर उसकी वैज्ञानिक पड़ताल करनी चाहिए. जैसे कि दूध के साथ नमक खाना क्यों मना है ? मछली के साथ दूध की मनाही क्यों है, शहद को गर्म करने से उसमें विषाक्त कण क्यों पैदा हो जाने की बात कहीं जाती है, हल्दी कितने आयामों में शरीर के स्वास्थ्य से जुड़ा हुआ है , चैत्र ऋतु में नीम के नरम पत्ते खाने वालों का स्वास्थ्य गर्मी में क्यों अच्छा रहता है और सर्दी में रात में दही खाने वालों का बुरा हाल क्यों हो जाता है ?
ऐसे कितने सारे नियम हैं, जो हमारे आस-पास स्थित रहा करते हैं, हम उनका लाभ भी उठाते आये हैं , लेकिन उसके बारे में सोचते नहीं हैं कि ऐसा क्यों है .... , लेकिन अब हमें अपने समाज की प्रतिष्ठा की खातिर यह करना है .

हमें कुछ और काम भी करने चाहिए- जैसे कि ब्रह्म मुर्हुत में उठने पर शुद्ध वायु की उपस्थिति की बात और वायु के उनचास प्रकारों की उपस्थिति की बात को भी . हमें ब्रह्मांड को नए नजरिए से देखना चाहिए .

हमें पितर-पक्ष और नवरात्रा के दिनों मं पृथ्वी से सीधी रेख (प्रकाश रेख) की दूरी पर स्थित ग्रहों की स्थिति की बात भी सोचनी चाहिए . यह तो तय है कि नवरात्रा के दिनों में देवी माँ के पृथ्वी पर आने की बात को विज्ञान से जोड़कर, ग्रहों की स्थिति से जोड़कर देखने पर नए रहस्यों से हमारा परिचय होना निश्चित है. इस बातों पर बड़े-बड़े शोध होने चाहिए .

वास्तव में भारतीय समाज की जड़ें अतीत से , बीत चुके युगों-चतुर्युगियों , सवत्सरों और कल्पों से जुड़ी हुई है . यही कारण है कि यहाँ राम-कृष्ण की भी पूजा होती है और दुर्गा , सरस्वती की भी और बलि राजा की भी . हमारे ये कार्यकलाप ही वे सूत्र हैं जो हमें बीत चुके चतुर्युगियों और अरबों वर्ष की याद दिलाते हैं, जिनकी छाया भारतीय समाज पर आज भी है .

यहाँ जब हम संवत का विश्व प्रचलित संवतों का उल्लेख करना जरूरी लगता है, जैसे फारसी संवत् , आदम संवत् , यहूदी, मूसा, रोम और यूनानी संवत् . इनमें सबसे कम वर्षों का जावा संवत् है- एक हजार आठ सौ पचहत्तर (1,8,75) वर्षों का और सबसे ज्यादा वर्षों वाला फारसी संवत् है- एक लाख, उन्नासी हजार, नौ सौ सत्रह (1,89,917) वर्षों का .

जबकि भारतीय संवतों में श्रीराम संवत् एक करोड़, पच्चीस लाख, उनहत्तर हजार पचास (1,25,69,050) वर्षों का है तथा कल्पाब्द संवत् - एक अरब, छियानबे करोड़, उनतीस लाख उनचास हजार पचास (1,96,29,49050) वर्षों का .

यह सच हमें आश्चर्य में डालने वाला है कि हमारी सभ्यता किस कदर पुरानी है और इस बिन्दु पर आकर राम-कृष्ण भी मिथक नहीं रह जाते और उपनिषद तथा योगवाशिष्ट के चरित्र भी सच लगते हैं. वास्तव में सत्यकाम जाबाल और प्रवाहण कभी हुए होंगे और चूड़ाला , लीला तथा वीतहव्य ने भी आत्मज्ञान प्राप्त किया होगा और अमरत्व-प्राप्त ज्ञानी काक भुशुण्ड ने पृथ्वियों के उद्भवों और प्रलयों को साक्षी रूप से देखा होगा .

भारतीय संदर्भों की सच्ची पड़ताल हमें उलझनों से भरी भूलभुलैया के बीच ला खड़ा करती है लेकिन बहुत बड़ी दिलासा भी देती है कि अपनी जड़ों को हमें खोजना चाहिए . उनके एक-दूसरे से जुड़ाव को विश्वस्तर पर प्रकट करना चाहिए .

भारतीय संदर्भों को विश्व स्तर पर ठोस रूप से प्रतिष्ठित करने का स्वप्न हमें देखना चाहिए . इस बात की प्रतीक्षा भारत को है, भारतीय समाज भारतीय समाज को है .

यह हम सभी के लिए एक अलिखित जिम्मेवारी जैसी है .

इला कुमार

www.ilakumar.org

mbl : 8527227336